राजा कुलशेखरकृत

मुकुन्दमाला

अनुवादक

इन्दुमति कौल, प्रभाकर

भूमिका लेखक

भगवान श्री लक्ष्मण जी (स्वामी श्री ईश्वर स्वरूप जी)
ईश्वर-आश्रम, गुप्तगंगा,
श्रीनगर (कश्मीर)

प्रकाशक

जानकीनाथ कौल, बी०, ए०, बी०, टी०, प्रभाकर,
अध्यापक, डी० ए० वी० हायर सेकण्डरी स्कूल,
अमीराकदल, श्रीनगर।

प्रथम संस्करण १९६४ मूल्य

ॐ

प्रस्तावना

वन्दे श्रीचरणारविन्दयुगलं संसारजाड्यापहम् ।
वन्दे श्रीजगदिंदुशीतलकरं स्वस्थं शुभं सन्निधिम् ।।
वन्दे भूसुरमर्पितार्तिप्रहरं संसारध्वांतापहम् ।
वन्दे शीलगुणान्वितं गुरुवरं श्रीनीलकण्ठं शिवम् ।।

इस जगत में द्वैत के संघर्ष में पडा जीव जन्मजन्मान्तर के सुख-दुःख को भोगता रहता है। यदि वह अपना स्वरूप जानने में उसी प्रकार लगता जिस प्रकार वह संसार के विषयों के अभिमुख रहता है तो अक्षय आनन्द को पाकर कृतकृत्य हो जाता। फिर यह भटकना नहीं पडता। वास्तव में वह आनन्द तो कहीं बाहर नहीं। जिस प्रकार बन में हिरण कस्तूरी की सुगन्धि का अधिकाधिक आस्वाद लेने के लिये सारा बन छान डालता है उसी प्रकार यह जीव अपने ही आनन्द का आभास विषयों में पाकर ठोकरें खाता फिरता है। यदि हिरण को पता लग जाय कि कस्तूरी उसके अपने पास ही है तो वह नाहक भटक कर अतिश्रम के दुःख को न पाता। ठीक इसी प्रकार यदि जीव पुरुषप्रयत्नसाध्य अपने पुण्य पुंज द्वारा कमाई भगवत्कृपा से अपने स्वरूप को जानने की इच्छा करता तो अवश्य ही गर्भवासादि दुःख से छूट कर नित्यानन्द की ओर बड जाता।

इस आनन्द वृक्ष का मूल सत्सङ्ग है। सत्सङ्ग के विना यह विवेक नहीं हो सकता है। अतः साधुमहिमा अपार अनिर्वचनीय है।

महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च। (नारद भक्ति सूत्र)

अर्थात् महान् पुरुष का सङ्ग दुर्लभ है अगम्य और अमोघ है; और वह भी :—

लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव । (नारद भक्ति सूत्र)

अर्थात् सन्तों का समागम परमेश्वर की कृपा से ही प्राप्त होता है। गुसांई तुलसीदास जी कहते हैं :—

बिनु सतसङ्ग विवेक न होई, रामकृपा बिनु सुलभ न सोई ।

सत्सङ्ग का इतना महत्व है कि सन्त कबीर निरा अनपढ़ होकर भी (मसि काकद छुए नहीं, कलम गही नहिं हाथ) सत्सङ्ग के प्रभाव से ही आत्माराम के सुख का भागी बना और अनेक भक्त जन उसकी वाणी का प्रसाद पाकर धन्य हुए। अतः आवश्यकता है श्रद्धा और भक्ति की, जिस से जीव सत्सङ्ग की ओर लग जाय। सत्सङ्ग से विवेक और वैराग्य उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् जीव साधना में झुट जाय तो ईश्वरीय ज्ञान का उदय होना सम्भव होता है, जिस से वह संकल्पजाल को समेट कर और अपने अद्वैत स्वरूप को पहचान कर अक्षय आनन्द का अनुभव करने लगेगा।

"यत्किंचिदपि संकल्पान्नरो दुःखे निमज्जति ।
न किंचिदपि संकल्पात्सुखमक्षयमश्नुते ॥" —योगवासिष्ठ

अथवा जीव का पशुभाव शिवभाव में विलय हो जायेगा—

"पाशबद्धः सदा जीवः पाशमुक्तः सदा शिवः" (कुलार्णव तन्त्र)

संसार-पाश में बन्धा जीव अनेक प्रकार का यातनाओं में पीडित होता रहता है। आत्मोन्नति के साधन में न लग कर विपर्यय ज्ञान के आश्रित अवनति की ओर ही बडता है। ईशावास्योपनिषद् में कहा है :—

असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता-
स्तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।

अर्थात्, आत्मा का हनन करने वाले लोग उन लोकों को जाते हैं जो असूर्या नाम वाले हैं, अप्रकाश रूप हैं, और घोर अन्धकार रूप तम से ढके हुए हैं।

अतः जीव को इस संसार के संकल्प-पाश से मुक्त होकर ही शिवभाव अर्थात् स्वस्वरूप में स्थिति (स्वस्थता) का अनुभव होता है। वास्तव में इसी अभेदभाव की सिद्धि अथवा स्वरूपस्थिति के लाभ को ही नमस्कार कहते हैं। इस अवस्था में आत्मा (जीवभाव अथवा पशुभाव) का आनन्दघन परमात्मा (शिवभाव) में स्वाहा हो जाता है। यही महायज्ञ है जिसके तीन अंग हैं:- कर्म, उपासना और ज्ञान। कर्म इस यज्ञ के साधनरूप हैं, उपासना साधनों का अनुष्ठान और ज्ञान अक्षयानन्द फल। यही अ उ म रूप प्रणव की तीन शक्तियां ॐ अक्षर में निहित हैं। यही एक अक्षर विष्णु, महेश्वर और ब्रह्मा का वाचक है। जैसे शास्त्र में कहा है :—

अकारो विष्णुरुद्दिष्ट उकारस्तु महेश्वरः।
मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवेन त्रयो मताः॥

प्रणव को शास्त्रों में दिव्य मन्त्र कहा है क्योंकि सृष्टि के आदि में त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके स्पन्दन से जो ध्वनि प्रकट होती है, वह ॐकार रूपा है। प्रणव मन्त्र का निर्वचन शिवपुराण के विश्वेश्वरी संहिता में एक स्थान पर इस प्रकार किया है :—

प्रः प्रपञ्चो न नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदुः॥

मण्डलेश्वर स्वामी श्री जयेन्द्रपुरी जी ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है :—" 'प्र' अर्थात् प्रपञ्च 'न' अर्थात् नहीं हैं 'वः' अर्थात् आपमें अर्थात् जिसके अर्थानुसंधान पूर्वक जप करने से मुमुक्षुको अपने सर्व प्रपञ्चोपशम शिव शान्त स्वरूप का बोध होता है, और जिस म[न्त्र] के द्वारा अपने शुद्ध स्वरूप में 'प्रपञ्चो नासीदस्ति भविष्यति' (प्रप[ञ्च] वस्तुगत्या न था, न है एवं न होगा) इस प्रकार प्रपञ्च का त्रैका[लिक] अत्यन्ताभाव निश्चय होता है, उस ॐ मन्त्र को प्रणव कहते हैं।"

यज्ञोपवीत भी ॐकार की तीन मात्राओं का ध्योतक है। इसी कारण यह तेहरा होता है। पं० सातवलेकर का विचार है कि "अ उ म इन तीन अक्षरों से क्रमशः जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति यह तीनों अवस्थाएं बोधित होती हैं। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन अवस्थाओं में व्याप्त है मानो मनुष्य का जीवन रूपी जो महायज्ञोपवीत है उसके तीन धागे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये ही हैं। इनको यज्ञरूप बनानेका कार्य प्रत्येक यज्ञोपवीत धारण करने वाले को करना चाहिए।" यज्ञोपवीत अर्थात ब्रह्मव्रत का अभिप्राय यही हैं। यही ब्रह्मचर्य (ब्रह्म आचरण करने का) व्रत है। "यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति" (गीता)।

यज्ञ में बलिदान की आवश्यकता अवश्य होती है। तबी तो यज्ञ सफल होता है। इस बलिदान में काम-क्रोध लोभादि इन्द्रियों के विकार ही बलि-पशु हैं। यह रहस्य महानिर्वाण तन्त्र में स्पष्ट लिखा है :-

कामक्रोधौ द्वौ पशू इमावेव बलिमर्पयेत् ।
कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलिंदत्त्वा जपं चरेत् ।।

"काम और क्रोध दो पशु हैं, इन्हीं की बलि देनी चाहिए। विघ्नकारी इन काम-क्रोध की बलि देकर (अर्थानुसंधान पूर्वक) जप करे।"

इस बलिदान करने में पुरोहित की विद्यमानता आवश्यक है। पुरो अर्थात् सब से पहले अपने यजमान का हित चाहे, उसको पुरोहित कहते हैं। उसका वर्णन शास्त्रों में इस प्रकार है :—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ।।
... ...
तत्पदं दर्शितं येन ....

अतः प्रणव की महिमा को जानना चाहिए। शास्त्रों में प्रसिद्ध है—

तस्य वाचकः प्रणवः :— प्रणव (ओंकार) उस ईश्वर का वाचक है।

मन्त्राणां प्रणवः सेतुः— प्रणव मन्त्रों का सेतु (पुल) है।

एक एव तु विज्ञेयः प्रणवो योगसाधनम् —
योग का प्रकृष्ट साधन एक प्रणव ही है।

ओमित्येतत्सर्वम् — जो कुछ है सब ॐ है।

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय— कल्याण के लिए इससे अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

इसलिए सिद्ध यही बात है कि—

निरन्तरं ब्रह्मणि ये रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः।

अर्थ :—लंगोटी लगाकर अर्थात् अखण्ड ब्रह्मचर्य से जिनकी भोग-लालसा सर्वथा निवृत्त है, जिनकी इन्द्रियां एवं मन स्वाधीन हैं, जो हरदम ब्रह्मानन्द का अनुसंधान करते हुए निर्भय प्रसन्न, शान्त एवं आनन्दमय रहते हैं, वे ही भाग्यशाली हैं।

इसी उद्देश्य को पाने के लिए वेद तन्त्र और शास्त्रों में यज्ञ, दान, तप और अनेक साधनायें विहित हैं। इनका यथायोग्य आचरण करने से मनुष्य इस देव-दुर्लभ जन्म को सफल बनाने की राह पर अपने माया-मोह से कलुषित अन्तःकरण को शुद्ध करने का प्रयत्न कर सकता है। फिर वेदान्त शास्त्राभिमत अथवा कश्मीर शैवमत (त्रिकमत) के अनुसार मुमुक्षु अद्वैतानन्द का उपभोग करते हुए अभिमत साधना के उत्कट अभ्यास से, जिसकी उपलब्धि ईश्वरीय अनुग्रह अथवा शक्ति-पात से ही होती है, कृतकृत्य बन सकता है। तबी कर्म उपासना और यज्ञ सफल होते हैं। जैसे कहा है :—

स्नातं तेन समस्ततीर्थ सलिले, दत्ता च सर्वावनि-
र्यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिलाः देवाश्च संतर्पिताः।
संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरास्त्रैलोक्य पूज्योऽप्यसौ
यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात्॥

अर्थ :—उसी (भाग्यशाली) ने सारे तीर्थों के जल में स्नान किया, सारी पृथ्वी दान में दी, सहस्त्रों यज्ञ किये, सब देवताओं को सन्तुष्ट किया, अपने पितरों का इस संसार सागर से उद्धार किया और वही तीनों लोकों में पूजा के योग्य है, जिस (मुमुक्ष) का मन एक क्षण के लिए भी सत्परामर्श द्वारा परब्रह्म अर्थात् शाश्वत शिव में स्थिरता को प्राप्त हुआ।

अर्थात् इन सब साधनों का परम साध्य परब्रह्म परमेश्वर का यथार्थ ज्ञान ही है।

इसी भावना को बोधित करने के लिए इस छोटी सी पुस्तिका, मुकुन्दमाला के श्लोकों का अर्थ, अपने कुछ मित्रों के आग्रह तथा सज्जन-प्रेरणा से मुद्रण में लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस महत्वपूर्ण स्तोत्र के श्लोकों का अर्थ, अपनी यत्किचित् बुद्धि से समझने का सौभाग्य, मेरी सुपुत्री इन्दुमति कौल को, भगवान श्री लक्ष्मण जू (स्वामी ईश्वर स्वरूप जी महाराज, ईश्वर, गुप्तगंगा, कश्मीर) से किसी पूर्व कृत्य के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है। इन श्लोकों का अवगहन करने के लिए ही इन्दुमति ने इनके अर्थ को क्रमपूर्वक लिखने का प्रयास किया। इस कार्य में उसे मेरी सहायता सुलभ थी। तबी तो उसके साहस में दृढता आगई। फिर उसने इस अर्थ को भगवान के श्रीचरणों में अर्पित करके अपने साहस की परीक्षा लेना चाही। श्री स्वामी जी महाराज ने अनुग्रह पूर्वक संशोधन किया और मुद्रण की अनुमति प्रकट की। अतः आपकी ही वस्तु आपके ही समर्पण है।

प्रत्येक श्लोक के अर्थ के अन्त में, उसका भाव सरलता पूर्वक समझाने के लिए, सारांश दिया गया है। मुकुन्दमाला में भक्ति और वैराग्य से पूर्ण उद्गार मिलते हैं जिनमें अन्तर्ज्योति परमात्मा में श्रद्धा की दृढता होती है। शरणागति भाव का उदय होता है जिसके द्वारा जीव परमानन्द के अद्वयामृत का पान कर धन्य होता है और जन्म-मरण की फांसी से छूट जाता है। भवरोग की औषधि मिलती है। यह नुस्खा इसी स्तोत्र के २५वें श्लोक में सप्रमाण इस प्रकार दिया है :—

हे लोकाः शृणुत प्रसूतिमरणव्याधेश्चिकित्सामिमां
योगज्ञाः समुदाहरन्ति मुनयो यां याज्ञवल्क्यादयः ।
अन्तर्ज्योतिरमेयमेकममृतं कृष्णाख्यमापीयतां
तत्पीतं परमौषधं वितनुते निर्वाणमात्यन्तिकम् ॥

अर्थ :- सुनो चिकित्सा इस व्याधि की, जन्म-मरण कुछ जहां न हो,
याज्ञवल्क्य ऋषि, मुनि और योगी, साक्षी करते सत्ता को।
तोल बिना जो अमृत-प्राकर, बिनमापे अन्तर्ज्योति को—
कृष्ण नाम की औषधि पीकर, पा लो अक्षय मुक्ति को॥

लल्लेश्वरी दिवस
२० अक्टोबर, १९६३
७७-द्राबीयार,
श्रीनगर (कश्मीर)

जानकीनाथ कौल
'कमल'

भूमिका

गत-वर्ष अपने प्रिय शिष्यों द्वारा प्रेरित होकर मैंने 'मुकुन्दमाला नामक स्तोत्र-ग्रन्थ अपने शिष्यों को पढ़ाया। सौभाग्यवश मेरे प्रिय सुहृत् श्री जानकीनाथ जी कौल की सुपुत्री इन्दुमती जी भी व्याख्यान सुनने के लिए आया करती थी। उसने मेरे संपूर्ण व्याख्यान को सुन और कुछ समय के पश्चात् मुझे इन श्लोकों का हिन्दी अनुवाद बना के सुनाया। मैं इसको देखके अति प्रसन्न हुआ, अतः मैंने जनता के हितार्थ इस मुकुन्दमाला नामक छोटी सी पुस्तिका को छपवाने का अनुमोदन किया। वही यह स्तोत्र-ग्रन्थ जनता के सम्मुख उपस्थित है। मुझे पूर्ण आशा है कि जनता को इस से किसी अंश में अवश्य आत्मिक लाभ प्राप्त होगा।

अस्तु इस स्तोत्र के रचयिता राजा कुलशेखर हुए हैं। इन्होंने अपने इष्ट-देव भगवान् श्रीकृष्ण (श्री नारायण) की स्तुति इतने सुन्दर मर्माहत तथा विनीत शब्दों में की है कि पाठक इन श्लोकों को बार बार पढ़ने का, चाव रखता है। इन श्लोकों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि एक भक्त को अपने प्रभु के प्रति कितना प्रेम, कितनी उत्सुकता तथा कितनी तन्मयता होती है। अन्त में इतना कहना ही पर्याप्त है कि इस स्तोत्र में छिपे हुए नवीनतम भाव अपनापन लिए हुए हैं।

बहुत वर्ष हुए इसके श्लोकों का अनुवाद स्वर्गीय श्री माधवानन्द जी ने किया था, किन्तु न जाने क्योंकर उस अनुवाद में पर्याप्त अशुद्धियां थीं। इसके अतिरिक्त और भी किसी ने इन श्लोकों का अनुवाद किया है, किन्तु उसमें भी छापे की अशुद्धियां तथा भाषा-सम्बन्धि अशुद्धियां दीख पडती हैं, अतः यह तीसरा प्रयास जनता की सेवा में उपस्थित है। आशा है यह प्रयास जनता को इस स्तोत्र की ओर पूर्ण-रूप से आकर्षित करने में समर्थ होगा। ओं शांतिः ।।

गुप्तगंगा, कश्मीर
अक्टोबर, १९६३

ब्रह्मचारी लक्ष्मण

उपहारम्

ADORATION

ईशारण्ये ईश्वराश्रमे रमन्तम् गुरुवरपद्मं भक्तभृंगैर्वरेण्यम् ।
कालातीतं कालकल्पावतीर्णं ईश्वरस्वरूपमीशमीशानमीढे ॥

To Adorable Guru.........
Moving in the forest of bliss at Ishwerashrama,
Adored by devotees like bees buzzing round the lotus,
The Eternal......come to conception......
To Ishwerswarupa, the bliss divine, I prostrate.

शैवं रूपं भक्तिभाजां वृणन्तम् भामात्रं तं हृद्गृहे भासयन्तम् ।
योगारूढं योगतत्त्वावगम्यम् ईश्वरस्वरूपमीशमीशानमीढे ॥

To Bliss in form......
Showering grace upon the devotees;
Divine Effulgence, perceivable in the chamber of heart;
Firm in Yoga and known by the principles thereof,
To Ishwerswarupa, the bliss divine, I prostrate.

संविन्मात्रं चिद्घनं चित्स्फारम् चैतन्यंतं चात्मविस्ताररूपम् ।
स्वस्थंशान्तंमंचमारोहवन्तम् शिवभक्तानामार्तिहर्तारमीढे ॥

To Essence absolute......
Sprouting in the blossom of knowledge;
Knowledge divine, spread by self-expression;
Seated in peace, bliss and self-existence,
To the Redeemer of Shiva's devotees, I prostrate.

77-Drabiyar,
Srinagar-Kashmir.

कौलेति जनकीनाथः
JANKINATH KOUL.

निवेदन

चरण-कमल बंदौं हरि-राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कछु दरसाई।

किसी पूर्व पुण्यपुञ्ज के फलस्वरूप मुझे श्री स्वामी ईश्वरस्वरूप जी महाराज के पास मुकुन्दमाला की सुन्दर स्तुति के अध्ययन का लाभ प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् प्रातः स्मृनीय स्वामी जी की प्रेरणा तथा अपने पूज्य पिता जी के आग्रह से मैंने इन श्लोकों का भाषानुवाद और सारांश लिखा। यह मेरा प्रथम प्रयास विद्वानों तथा विज्ञ पुरुषों के सामने केवल मेरी तोतली वाणी का ही प्रदर्शन है। यदि भक्तजनों को इस से कुछ लाभ प्राप्त हो तो यह मेरा बाल-विनोद मेरे हर्ष का कारण बनेगा।

इस अनुवाद का संशोधन मेरे पिता जी ने किया। स्तुति के आदि में पूज्य स्वामी जी को 'उपहार' और अन्त में 'शिव-शंकर' (कश्मीरी ज़बान में) अंग्रेज़ी अनुवाद सहित पिता जी की रचनाओं में से भक्तजनों के हितार्थ दिए गए हैं।

विनीता—
इन्दुमति कौल, प्रभाकर,

अथ मुकुन्दमाला

ॐ वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं
कुन्देन्दुशङ्खदशनं शिशुगोपवेषम्।
इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपीठं
वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम्॥१॥

अर्थ :— जिसकी आंखें कमल के पत्ते की तरह लम्बी हैं; कुन्द फ़ूल, चन्द्रमा और शंख की तरह जिसके दांत सफेद हैं; जो ग्वालबाल के वेश में है; जिसके पाद-पीठ (पैरों की चौकी) को इन्द्रादि देवता-गण वन्दना करते हैं और जो वसुदेव का सन्तान है उसी नारायण को मैं वन्दना करता हूँ।

सारांश :— मैं भगवान की महानता और उसकी लीलाओं का अनुभव करता रहूँ।

श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति
भक्तिप्रियेति भवलुण्ठनकोविदेति।
नाथेति नागशयनेति जगन्निवासेत्यालापिनं
प्रतिदिनं कुरु मां मुकुन्द॥२॥

अर्थ :— "हे मुकुन्द! हे लक्ष्मी के प्यारे! हे वर को देने वाले!

हे दया में लगे हुए ! हे भक्तों के प्यारे ! हे संसार के बीच लुढ़कने में भी पंड़ित (चतुर) ! हे स्वामी ! हे शेषनाग पर सोने वाले ! और हे जगत में निवास करने वाले !" ये ही आलाप करता हुआ मैं सदैव बना रहूँ।

सारांश :— मैं सदा भगवान के नामों का जप करते हुए उनके स्वरूप का ध्यान करने वाला रहूँ।

जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं
जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः।
जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलाङ्गो
जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः ॥३॥

अर्थ :— हे मुकुन्द ! देवकी को आनन्द देने वाले ! आपको जय-जयकार हो। कृष्ण को जो यादव-कुल का प्रदीप (चराग) है उसी आपको जयजयकार हो, जो बादल की तरह श्याम रंग वाला है और जिसके अंग कोमल हैं उसी आपको जयजयकार हो और जो पृथ्वी के भार (पापों) को नाश करने वाला है उसी नारायण को जयजयकार हो।

सारांश :—विभिन्न नामों वाले आप लीलामय नारायण के स्वरूप में मैं लीन हो जाऊँ।

मुकुन्द मूर्ध्ना प्रणिपत्य याचे
भवन्तमेकान्तमियन्तमर्थम्।
अविस्मृतिस्त्वच्चरणारविन्दे
भवे भवे मेऽस्तु भवत्प्रसादात् ॥४॥

हे नारायण ! मैं आपका सिर से (नत-मस्तक होकर) प्रणाम करता हूँ और मैं आप से केवल यही एक वर मांगता हूं कि मैं जन्म-जन्मान्तर

में आपके प्रसाद से आपके चरण-कमलों का स्मरण भूल न जाऊँ।

सारांश :—मैं नित्य और निरन्तर भगवान का स्मरण करता रहूँ।

श्रीमुकुन्दपदाम्भोजमधुनः परमाद्भुतम्।
यत्पायिनो न मुह्यन्ति मुह्यन्ति यदपायिनः ॥५॥

अर्थ :— श्रीमुकुन्द के चरण-कमलों का मद्य (शराब) बहुत ही अलौकिक है जिसको पीकर (भक्तजन) मोह में नहीं पड़ते हैं और जिसको (अभक्तजन या संसारी लोग) न पीकर ही मोह में पड़ जाते हैं।

सारांश :— भगवान के यथार्थ स्वरूप का निरन्तर ध्यान करने से ही मनुष्य माया-मोह से निवृति प्राप्त कर सकता है।

नाहं वन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतोः
कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे नारकं नापनेतुम्।
रम्यारामामृदुतनुलतानन्दने नापि रन्तुं
भावे भावे हृदयभवने भावयेयं भवन्तम् ॥६॥

अर्थ :— हे नारायण! मैं अद्वैत के सिद्ध होने के कारण आपके चरण-कमलों की जोड़ी को प्रणाम नहीं करता, न कुम्भीपाक के भयंकर नरक को हटाने के लिए ही और इन्द्र के बाग में, जिसमें कोमल और सूक्ष्म लताएं हैं उसमें सुन्दर अप्सराओं की क्रीड़ा के लिए भी नहीं, परन्तु मैं हर अवस्था में हृदय रूपी भवन में आपकी ही भावना करूं। इसीलिए मैं आपकी वन्दना करता हूँ।

सारांश :— मुझे अद्वैतवादी होने का अभिमान न हो। इहलोक और परलोक के भोगों में वैराग्य हो और स्वस्वरूप का निरन्तर ध्यान रहे।

नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे
यद्यद्भव्यं भवतु भगवन्पूर्वकर्मानुरूपम्।
एतत्प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ॥७॥

अर्थ :— हे भगवान ! मुझे लौकिक धर्म में भी विश्वास नहीं है, न धन के जोड़ने में, और न कामनाओं के भोगने में ही विश्वास है। जो मेरे प्रारब्ध के अनुसार भोग प्राप्त हों वह होते रहें। मैं आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे आपके चरण-कमलों की जोड़ी में जन्म-जन्मान्तर में निश्चल भक्ति हो, क्योंकि मैंने आपकी भक्ति को ही बहुत माना है।

सारांश :— निज कर्मानुसार (प्रारब्धवश) लोक में भोग भोगता हुआ भी मैं भगवान की अचल भक्ति का भाजन बना रहूँ।

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो
नरके वा नरकान्तक प्रकामम्।
अवधीरितशारदारविन्दौ चरणौ
ते मरणेऽपि चिन्तयामि ॥८॥

अर्थ :— हे नरक के शत्रु भगवान ! मुझे निश्चय करके स्वर्ग लोक में, मर्त्यलोक में या नरक लोक में निवास करना हो (परन्तु) आपके चरण-कमल जिनसे शरद-काल के कमल को भी अनादर होता है, उन्हीं की मैं मरण-काल में भी चिन्ता करता रहूँ।

सारांश :—प्रारब्धानुसार संसार की किसी भी परिस्थिति में रहते हुए मुझे अन्त तक भगवान के स्वरूप का चिन्तन बना रहे।

सरसिजनयने सशंखचक्रे मुरभिदि
मा विरमेह चित्त रन्तुम् ।
सुखतरमपरं न जातु जाने
हरिचरणस्मरणामृतेन तुल्यम् ॥६॥

अर्थ :— हे मन ! जिस नारायण के नेत्र कमल के पते जैसे हैं, जो शंख और चक्र धारण किये हुए और जो मुरदैत्य का नाशक नारायण है, उसमें राग करने से मत रुको। निश्चय ही मैं हरि के चरणों के स्मरण रूपी अमृत के समान दूसरा कोई सुख नहीं जानता हूँ।

सारांश :— मन को भगवत्-चिन्तन में लगाने से ही स्वरूप लाभ होना सम्भव है।

मा भैर्मन्दमनो विचिन्त्य बहुधा यामीश्चिरं यातना
नामी नः प्रभवन्ति पापरिपवः स्वामी ननु श्रीधरः ।
आलस्यं व्यपनीय भक्तिसुलभं ध्यायस्व नारायणं
लोकस्य व्यसनापनोदनकरो दासस्य किं न क्षमः ॥१०॥

अर्थ :— हे मूर्ख मन ! चिर काल वर्ती यमराज की पीड़ाओं की चिन्ता से मत डरो, यह पाप की शत्रु पीड़ाएं हमें दबाने में समथ नहीं हैं। निश्चय करके हमारे स्वामी वही लक्ष्मी पति नारायण हैं। (अत:) आलस्य को दूर भगाकर भक्ति के द्वारा जो नारायण सुलभ है उसी का ध्यान कर। वह लोगों के दु:खों को दूर करने में समर्थ हैं, वह क्या मुझ दास के दु:खों को दूर करने में समर्थ नहीं हो सकते। अर्थात् वह मुझ दास के दु:खों को अवश्य दूर कर सकते हैं।

सारांश :— आलस्य को त्याग कर और पुरुषार्थ से बल पाकर ही मन को भगवत्-चिन्तन में लगाने से मनुष्य ईश्वर-अनुग्रह का भाजन बन सकता है।

भवजलधिमगाधं दुस्तरं निस्तरेयं
कथमहमिति चेतो मास्म गाः कातरत्वम् ।
सरसिजदृशि देवे तावकी भक्तिरेका
नरकभिदि निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम् ॥११॥

अर्थ :—हे मन ! "संसार रूपी सागर जो कठिन गहरा है उसमें मैं किस तरह पार हो जाऊँ", यह विचार कर कायर मत बनो। जिस देव कृष्ण के नेत्र कमल पत्र के समान हैं, जो नरक को भी नाश करने में प्रवीण है केवल उसी की भक्ति ही तुम्हें इस (भव-सागर) से अवश्य पार ले जायगी।

सारांश :— मन को भगवत्-चिन्तन में लगाने से मनुष्य इस भव-सागर से पार हो सकता है।

तृष्णातोये मदनपवनोद्धूतमोहोर्मिमाले
दारावर्ते तनयसहजग्राहसङ्घाकुले च ।
संसाराख्ये महति जलधौ मज्जतां नस्त्रिधामन्
पादाम्भोजे वरद भवतो भक्तिनावं प्रसीद ॥१२॥

अर्थ :- हे तीन लोकों अथवा तीन अवस्थाओं के स्वामी ! हम संसार रूपी महान् समुद्र में, जिसमें तृष्णा रूपी जल है, कामदेव रूपी लहरों की मालाएं, (विषय-भोग-प्रधान) स्त्री रूपी भंवर (आवलुन) और सन्तान सुन्दर मगरमच्छों का समूह जैसा है, इन्हीं के मेल से इसमें डूबे हुए हैं। वर को देने वाले हे नारायण ! हमें अपनी चरण-कमलों की भक्ति रूपी किश्ती में ही आश्रय दें।

सारांश :—मनुष्य को जागृत आदि तीनों अवस्थाओं में पुरुषोत्तम भगवान का ध्यान दृढ़ होने पर ही द्वैत-भ्रम का नाश होकर जीवन मुक्ति का लाभ प्राप्त हो सकता है।

पृथ्वी रेणुरणुः पयांसि कणिका फल्गुः स्फुलिङ्गो
लघुस्तेजो निःश्वसनं मरुत्तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः।
क्षुद्रा रुद्रपितामहप्रभृतयः कीटाः समस्ताः सुरा
दृष्टे यत्र स तावको विजयते भूमावधूतावधिः ॥१३॥

अर्थ :—जिस आपका साक्षात्कार करने पर पृथ्वी एक धूल का कण दिखाई देती है, जल छोटी छोटी बूंदें बनते हैं, तेज आग की छोटी छोटी चिन्गारियां, वायु एक सांस मात्र रहता है और आकाश एक सूक्ष्म छेद जैसा प्रतीत होता है, शिव और ब्रह्मा आदि सब देवता कीड़े जैसे दिखाई देते हैं। उसी आपका उत्तम से उत्तम असीम सुख की जय हो।

सारांश :—उस पुरुषोत्तम परब्रह्म का साक्षात्कार होने पर पंच-भूतों की कोई सत्ता नहीं रहती है और द्वैत परम्परा में पड़े हुए देवता गण भी तो छूट जाते हैं।

आम्नायाभ्यसितान्यरण्यरुदितं कृच्छ्रव्रतान्यन्वहं
मेदच्छेदफलानि पूर्तविधयः सर्वं हुतं भस्मनि।
तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं विना
यत्पदद्वन्द्वाम्भोरुहसं स्तुतिं विजयते देवः स नारायणः॥

अर्थ :— जिस नारायण के चरण-कमलों की जोड़ी की स्तुति के बिना शास्त्रों का अभ्यास करना जंगल में रोने के समान निष्फल हो जाता है, प्रतिदिन रखे हुए कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रतादि केवल त्वचा तथा चर्बी को ही पिगलाती है, परोपकार के पूर्व कर्म भी भस्म में आहुति ड़ालने के तुल्य निष्फल हो जाते हैं, तीर्थों में स्नान करना हाथी के स्नान के समान निष्फल हो जाता है, उसी नारायण की भक्ति का आश्रय ही फल-दायक है। अतः उसी नारायण की जय हो।

सारांश :— नारायण की अनन्य भक्ति के बिना शास्त्र विहित (विधान किये हुए) कर्म भी निष्फल ही होते हैं।

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारावृतानाम्।
विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां
भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम्॥१५॥

अर्थ :— संसार समुद्र में डूबे हुए, शीतोष्णादि द्वन्द्वों के वायु से छिन्न भिन्न किये हुए, (आसक्ति के कारण) पुत्र, पुत्री और स्त्री की रक्षा के भार में घिरे हुए, कठिन विषयों रूपी जल में डूबे हुए, आश्रय देने वाली किश्ती (यम, नियम, साधन युक्त सुदृढ़ शरीर) से रहित बने हुए मनुष्यों को केवल विष्णु रूपी जहाज़ ही शरण देने वाला है।

सारांश :— संकल्प - विकल्प रूप दुःख से पूर्ण इस संसार में केवल भगवान विष्णु का आश्रय ही (साधक) मनुष्य को कैवल्य सुख प्रदान करने में समर्थ है।

रजसि निपतितानां मोहजालावृतानां
जननमरणधूलीदुर्गतिं सङ्गतानाम्।
शरणमशरणानामेक एवातुराणां
कुशलपथि नियोक्ता चक्रपाणिर्नराणाम्॥१६॥

अर्थ :— रजोगुण रूपी धूल में डूबे हुए मोह रूपी जाल से घेरे हुए, जन्म - मरण की आंधी की दुर्गति में मिले हुए, (इस प्रकार) असहाय बने हुए दुःखी मनुष्यों को आत्म - उन्नति के कुशल मार्ग में लगाने वाला सुदर्शन-चक्र-धारी नारायण ही केवल एक सहारा है।

सारांश :— संसार के दुःखों का अनुभव करके जिन प्राणियों में

वैराग्य उत्पन्न हुआ हो, उनको नारायण ही कल्याण मार्ग पर चलने का अनुग्रह करते हैं।

अपराधसहस्रसङ्कुलं पतितं भीमभवार्णवोदरे।
अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु ॥१७॥

अर्थ :— हे हरि ! हज़ारों अपराधों में बन्धे हुए भयंकर संसार रूपी समुद्र के बीच में पड़े हुए निवृति उपाय से रहित और शरण में आये हुए (मुझ) को कृपा करके केवल अपने स्वरूप में लीन कीजिये।

सारांश :—संसार के दुःखों से पीड़ित मनुष्य का भी उद्धार भगवान अपनी अनुग्रह शक्ती से करने में समर्थ है।

यच्चिन्तितं च मनसा वचसा निरुक्तं
चक्षुःकरश्रवणपादविचेष्टितं च।
यद्यन्निशासु दिवसेषु कृतं मयैव
तत्तज्जनार्दन तवार्चनमेव भूयात् ॥१८॥

अर्थ :— हे जनार्दन (पापी जनों का मर्दन करने वाले) ! जो कुछ मैंने मन में चिन्तन किया है, जो मैंने वाणी से कहा है, जो मैंने हाथ, कान, आंख और चरण से चेष्टाएं की हैं और जो कर्म मैंने रात और दिन में किये हैं वे (सब) मुझे आपकी ही पूजा बन जाए।

सारांश :—भगवत्-अनुग्रह चाहने वाले भक्त के आन्तरिक और बाह्य सब कर्म भगवत् अर्पण ही होते हैं।

मा मे स्त्रीत्वं मा च मे दासभावो
मा मूर्खत्वं मा कुदेशेषु जन्म।

मिथ्यादृष्टिर्मा च मे स्यात्कदाचिज्जातौ
जातौ विष्णुभक्तो भवामि ॥१६॥

अर्थ :—(हे भगवान!) मुझे स्त्री-भाव (विषयोन्मुख होने के कारण चंचल स्वभाव) न मिले, न मुझे दास भाव मिले, न मैं मूर्ख भाव में रहूँ, न मेरा जन्म बुरे देश (जहां साधना में बाधा हो और सत्जनों का अभाव हो) में हो और न मुझे कभी भी अनात्म दृष्टि (देह-बुद्धि) हो बल्कि मैं जन्म-जन्मान्तरों में विष्णु का भक्त बन जाऊँ।

सारांश :— देह बुद्धि को बढ़ाने वाली परिस्थितियों की उपेक्षा (तिरस्कार) करके ही भक्त भगवान के अनन्य-शरण-भाव को प्राप्त होता है।

आनन्द गोविन्द मुकुन्द राम
नारायणानन्त निरामयेति।
वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिदहो
जनानां व्यसनानि मोक्षे ॥२०॥

अर्थ :— आश्चर्य है कि मनुष्य—हे आनन्द! हे गोविन्द! हे मुकुन्द! हे राम! हे नारायण! हे अनन्त! और हे राग रहित! ये नाम कहने के लिए समर्थ होकर भी कभी नहीं कहते हैं, इसीलिए तो उन्हें मोक्ष (मुक्ति) मिलने में रुकावटें आ जाती हैं।

सारांश :—अमूल्य और देवदुर्लभ मानव जन्म को प्राप्त करके भी मनुष्य अपने सहज स्वरूप को पहचानने का पुरुषार्थ नहीं करता। हाय! यह कैसा माया मोह है।

क्षीरसागरतरङ्गशीकरासारतारकितचारुमूर्तये।
भोगिभोगशयनीयशायिने माधवाय मधुविद्विषे नमः॥

अर्थ :—क्षीर-सागर के लहरों से उठने वाली छींटों के बूछाड़ से मानो तारों को सुन्दर मूर्ति वाले लक्ष्मी-पति नरायण और शेषनाग रूपी भोग-शय्या पर शयन करने वाले मधु राक्षस के शत्रु (मारने वाले) नारायण को मैं नमस्कार करता हूँ।

सारांश :—परब्रह्म के स्वरूप में निमग्न होने से उसकी अनन्तता का अनुभव होता है। इस प्रकार कर्म-फलों के भोग से निर्लेप होकर मानव जोव-भाव के अहंकार को पर-प्रमातृ-भाव में लीन कर बैठता है।

क्षीरसारमपनीय शङ्कया स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया।
मानसे मम नितान्ततामसे नन्दनन्दन कुतो न लीयसे॥

अर्थ :—हे नन्द गोप को आनन्द देने वाले श्री कृष्ण भगवान! यदि आपने मक्खन को चोरी करने की शंका से भाग जाना स्वीकार किया है तो घने अन्धकार से भरे हुए मेरे मन में क्यों नहीं छिप जाते हो।

सारांश :— अज्ञान अन्धकार से भरे हुए मन वाला पुरुष भी यदि स्वय प्रकाश भगवान का ध्यान करे तो उसे भगवान का प्रसाद होना सम्भव है।

वात्सल्यादभयप्रदानसमयादार्तार्तिनिर्वापणात्
औदार्यादघशोषणादगणितश्रेयःपदप्रापणात्।
सेव्यः श्रीपतिरेव सर्वजगतामेकान्ततः साक्षिणः
प्रह्लादश्च विभीषणश्च करिराट् पाञ्चाल्यहल्या ध्रुवः।२३।

अर्थ :—लक्ष्मीपति नरायण ही जगत के सब मनुष्यों द्वारा अधिकतर (छः प्रकार से) उपासना करने योग्य है, इसके लिए अधिकतर साक्षी यह है :- वात्सल्य (स्नेह) से प्रह्लाद का, अभय प्रदान के आचरण से

विभीषण का, आर्त के दुःख को दूर करने से गजेन्द्र का, उद्धारता से द्रोपदी का, अगणित पापों के नाश करने से अहल्या का और मोक्ष पद के प्राप्त कराने से भक्त ध्रुव का उद्धार हुआ।

सारांश :—विशेष भक्तों के उदाहरण से यह स्वयं सिद्ध है कि भगवान की अनन्य उपासना करने से हो आत्मोद्धार होता है।

नाथे श्रीपुरुषोत्तमे त्रिजगतामेकाधिपे चेतसा
सेव्ये स्वस्य पदस्य दातरि परे नारायणे तिष्ठति।
यं कञ्चित्पुरुषाधमं कतिपयग्रामेशमल्पार्थदं
सेवायै मृगयामहे नरमहो मूढा वराका वयम् ॥२४॥

अर्थ :— सर्व जगत के स्वामी, सर्व-समृद्ध पुरुषोत्तम, तीन लोकों के स्वामी, मन से सेवा करने पर अपने पद को देने वाले परमात्मा और नारायण के होते हुए यदि हम किसी संकुचित कतिपय ग्रामों के मालिक बने हुए पुरुषों में अधम पुरुष की सेवा की इच्छा रखते हैं (तो) आश्चर्य है कि हम सब बेचारे मूर्ख ही हैं, जो जगत को छोड़कर इस अधम पुरुष की सेवा करते हैं।

सारांश :—ईश्वर की अनन्योपासना ही आत्मोन्नति का कारण हो सकती है।

हे लोकाः शृणुत प्रसूतिमरणव्याधेश्चिकित्सामिमां
योगज्ञाः समुदाहरन्ति मुनयो यां याज्ञवल्क्यादयः।
अन्तर्ज्योतिरमेयमेकममृतं कृष्णाख्यमापीयतां
तत्पीतं परमौषधं वितनुते निर्वाणमात्यन्तिकम् ॥२५॥

अर्थ :— अरे लोगो! जन्म-मरण रूप व्याधि की इस चिकित्सा (इलाज) को सुनो, जिसे याज्ञवल्क्य आदि योगी और मुनि कहते हैं।

श्री कृष्ण नाम रूपी अन्तर्ज्योति स्वरूप और परिमाण रहित अमृत को पी लो। उस परम औषधि को पीकर पारमार्थिक मोक्ष मिल जाता है।

सारांश :—अन्तर्ज्योति स्वरूप भगवान का ध्यान और नाम जप रूप औषधि ही भव-रोग को हटाकर आत्मोन्नति का साधन बन सकती है।

बद्धेनाञ्जलिना नतेन शिरसा गात्रैः सरोमोद्गमैः
कण्ठेन स्वरगद्गदेन नयनोद्गीर्णेन बाष्पाम्बुना।
नित्यं त्वच्चरणारविन्दयुगलध्यानामृतास्वादि-
नामस्माकं सरसीरुहाक्ष सततं सम्पद्यतां जीवितम् ।२६।

अर्थ :—हे कमलपत्र जैसे नेत्र वाले प्रभु! दोनों हाथ जोड़कर, झुके हुए सिर से, रोमांच से भरे अंगों से, गद्गद स्वर वाले कण्ठ से और नेत्रों से बहते हुए आंसुओं के जल से प्रतिदिन आपके चरणों को जोडी का ध्यान रूपी अमृत का स्वाद लेने वाले हमको इसी भांति सारा जीवन व्यतीत हो जाये।

सारांश :—सम्पूर्ण शरणागति भाव से निर्लेप भगवान के ध्यान में अवस्थित रहना ही यथार्थ में जीवन है।

तत्त्वं ब्रुवाणानि परं परस्मादहो
क्षरन्तीव सुधां पदानि।
आवर्तय प्राञ्जलिरस्मि जिह्वे!
नामानि नारायणगोचराणि ।।२७।।

अर्थ :—अरी जीभ! मैं हाथ जोड़कर तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम उन नामों का बार बार जप करती रहो जो तत्व को कहने वाले बड़े से बड़े नारायण सम्बन्धी नामों के पद, अमृत की तरह अति चकित विस्तार को प्राप्त होते हैं।

सारांश :—स्वरूप के नित्य स्मरण में रहना ही जप है।

इदं शरीरं परिणामपेशलं
पतत्यवश्यं श्लथसन्धिजर्जरम्।
किमौषधैः क्लिश्यसि मूढ दुर्मते
निरामयं कृष्णरसायनं पिब ।।२८।।

अर्थ :—यह शरीर परिणाम-स्वरूप मसलन वाला है, ढ़ीले जोड़ों वाला और जर्जर होने के कारण अवश्य नष्ट होने वाला है। (अतः) हे दुर्बुद्धि वाले मूर्ख (जीव)! औषधियों (दवाइयों) के सेवन करने से क्यों कष्ट उठा रहे हो? माया के उपाधि रहित श्री कृष्ण नाम की औषधि पी लो (जिस से मायोपाधि रहित ब्रह्म अर्थात् स्वस्वरूप में स्थित होकर अक्षय आनन्द का उपभोग करोगे)।

सारांश :—क्षण-भंगुर और नाशवान इस शरीर का मोह छोडकर स्वरूपस्थिति का लाभ सम्भव है।

श्रीमन्नाम प्रोच्य नारायणाख्यं
के न प्राप्ता वाञ्छितं पापिनोऽपि।
हा नः पूर्वं वाक्प्रवृत्ता न तस्मिंस्तेन
प्राप्तं गर्भवासादिदुःखम् ।।२६।।

अर्थ :—नारायण के शुभ नाम का (ध्यान-पूर्वक) उच्चारण करने से किन पापियों ने अपनी अपनी इच्छाओं के अनुसार फल नहीं पाया। शोक है कि हमारी वाणी उस (नारायण के नामोच्चारण) में पहले (पूर्व जन्मों में) प्रवृत्त न हुई थी। इसी से तो गर्भवास आदि (संसार के) दुःखों को हम प्राप्त हुए हैं।

सारांश :—ईश्वर पराङ्मुख रहने से ही जीव मायाकार्य जगत के दुःखों का अनुभव करता है।

मा द्राक्षं क्षीणपुण्यान्क्षणमपि भवतो भक्तिहीनान्पदाब्जे
मा श्रौषं श्राव्यबद्धं तव चरितमपास्यान्यदाख्यानजातम्।
मास्प्राक्षं माधव त्वामपि भुवनपतिं चेतसाऽपह्नुवानं मा-
भूवं त्वत्सपर्याव्यतिकररहितो जन्मजन्मान्तरेऽपि ॥३०॥

अर्थ :—हे लक्ष्मीपति नारायण ! आपके चरण-कमलों में भक्ति से रहित (अतः) क्षीण हुए पुण्य वाले जीवों को मैं न देखूं, आपके चरित (गुणानुवाद) को छोडकर दूसरे कथा-कहानी कान धर कर न सुनूं। आप (चौदह) भुवनों के स्वामी को मन से निषेध करने वाले का स्पर्श न करूं और इस जन्म अथवा दूसरे जन्मों में भी आपके ध्यान आदि पूजा से विमुख न रहूँ।

सारांश :—आत्मलाभ के लिए ईश्वरोन्मुख रहने से पहले विषयों से विमुख होना आवश्यक है।

मदन परिहर स्थितिं मदीये
मनसि मुकुन्द पदारविन्दधाम्नि।
हरनयनकृशानुना कृशोऽसि
स्मरसि न चक्रपराक्रमं मुरारेः ॥३१॥

अर्थ :—हे कामदेव ! भगवान् नारायण के चरण-कमलों का स्थान जो मेरा मन बना हुआ है, उसमें तुम ठहरना छोड़ दो। तुम तो शिव के नेत्र की (तीसरे नेत्र की) अग्नि से दग्ध प्राय बने हुए हो (और) नारायण के सुदर्शन चक्र का पराक्रम (बल) को स्मरण नहीं करते हो।

सारांश :—समग्र उन्नतियों का साधन एक मात्र ब्रह्मचर्य ही है।

दारा वाराकरवरसुता तेऽङ्गजोऽयं विरिञ्चिः
स्तोता वेदास्तव सुरगणो भृत्यवर्गः प्रसादः।
मुक्तिर्मध्ये जगदविकलं तावकी देवकीयं
माता मित्रं बलरिपुसुतस्तत्त्वतोन्यन्न जाने ॥३२॥

अर्थ :—क्षीर सागर की उत्तम पुत्री आपकी स्त्री है, ब्रह्मा आपका पुत्र है, चार वेद (आर्ष) आपकी स्तुति करते हैं, देवता गण ही आपके नौकरों का समूह है, जगत के बीच में रहते हुए व्याकुल न होने का अनुग्रह ही मुक्ति है, देवकी आपकी माता है, (बलि के शत्रु का पुत्र आपका मित्र है इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं जानता हूँ।

सारांश :—भगवान नाराण ही वेदों और देवताओं का आदि कारण है। अतः उसकी सता सर्वजगत में व्याप्त है। यही निश्चय होना चाहिए।

जिह्वे कीर्तय केशवं मुररिपुं चेतो भज श्रीधरं
पाणिद्वन्द्व समर्चयाच्युत कथाः श्रोत्रद्वय त्वं शृणु।
कृष्णं लोकय लोचनद्वय हरेर्गच्छाङ्घ्रियुग्मालयं
जिघ्र घ्राण मुकुन्दपादतुलसीं मूर्धन्नामाधोक्षजम् ॥३३॥

अर्थ :— अरी जीभ ! केशव का कीर्तन करते रहो, हे मन ! मुरारी का भजन करते रहो, हे दो हाथो ! लक्ष्मीपति नारायण की पूजा करते रहो, हे दो कानो ! तुम अच्युत नारायण की कथाओं को सुनते रहो, हे दो नेत्रो ! भगवान कृष्ण के ध्यान में ही मग्न रहो हे दो पैरो ! हरि के मन्दिर की यात्रा करते रहो, हे नासिका ! तुम मुकुन्द के पादों पर अर्पित तुलसी को सूंघते रहो और हे सिर ! इन्द्रियों से अतीत को नमन करते रहो।

सारांश :—इन्द्रियों को विषयों से हटा कर नारायण में लीन करना ही श्रेयस्कर है।

यत्कृष्णप्रणिपातधूलिधवलं तद्वै शिरः स्याच्छुभं
ते नेत्रे तमसोज्झिते सुरुचिरे याभ्यां हरिर्दृश्यते।
सा बुद्धिर्नियमैर्यमैश्च विमला या माधवध्यायिनी
सा जिह्वाऽमृतवर्षिणी प्रतिपदं या स्तौति नारायणम् ॥

अर्थ :—वही सिर सार्थक है जो कृष्ण भगवान को प्रणाम करने से धूलि धूसरित (अर्थात् धूलि से सफेद) हुआ हो। वे ही (अज्ञान रूप) अन्धकार को हटाये हुए सुन्दर नेत्र (अर्थात् दिव्य चक्षु) है जिन से भगवान हरि का दर्शन (साक्षात्कार) किया जाता हो। नियम (जप, तप, दान आदि द्वारा इन्द्रिय निग्रह) और यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि द्वारा मनोनिग्रह) का सेवन करने से निर्मल बनी हुई बुद्धि (जिसे ऋतम्बरा बुद्धि कहते हैं) वही है जो नारायण का ध्यान करती हो और वही प्रत्येक वार्ता में (कथि पत कथि प्यठ) अमृत वर्षन करने वाली जिह्वा है जो (मन और वाणी को एक करके) नारायण की स्तुति में लगी हो।

सारांश :—इन्द्रियों द्वारा अगोचर भगवान का साक्षात्कार करने के लिए पहले उनके विषयों के मोह से सर्वथा निवृत्त होना आवश्कक है।

भक्तद्वेषभुजङ्गगारुडमणिस्त्रैलोक्यरक्षामणि-
गोपीलोचनचातकाम्बुदमणिः सौन्दर्यमुद्रामणिः।
श्रीकान्तामणिरुक्मिणीघनकुचद्वन्द्वैकभूषामणिः
श्रेयो ध्येयशिखामणिर्दिशतु नो गोपालचूडामणिः।३५।

अर्थ :—बाल-कृष्ण गोपाल (अर्थात् वेदों में गाया हुआ भगवान

नारायण) रूप (जो) शिरोरत्न (अर्थात् सर्वाराध्य देव है, जो) भक्तों में द्वेष रूप सांप को नष्ट करने वाला गरुड़ रूपी रत्न (है, जो) त्रिलोकी की रक्षा करने वाला रत्न (है, जो) सुन्दरता रूप अंगूठी का रत्न (है, जो) प्यारी लक्ष्मी का रत्न (है, जो) रुक्मिनी के (ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति रूप) घने वक्षस्थल का केवल भूषण बना हुआ रत्न (है और जो) ध्यान करने योग्य चर्मावस्था रूप रत्न (है, वह) हम (भक्तों को) कल्याण प्रदान करे।

सारांश :—देवादिदेव परब्रह्म के स्वरूप का अनुभव उसी के अनुग्रह से माया के मोह को लांग कर ही होना सम्भव है।

शत्रुच्छेदैकमन्त्रं सकलमुपनिषद्वाक्यसम्पूज्यमन्त्रं
संसारोत्तारमन्त्रं समुदिततमसां संघनिर्याणमन्त्रम्।
सर्वैश्वर्यैकमन्त्रं व्यसनभुजगसन्दष्टसन्त्राणमन्त्रं
जिह्वे श्रीकृष्णमन्त्रं जप जप सततं जन्मसाफल्यमन्त्रम्॥

अर्थ :—हे जीभ! शत्रु के मारने का (अर्थात् द्वैत का निवारण करने वाला) एक ही मन्त्र, सारे उपनिषद् वाक्यों द्वारा पूजा के योग्य मन्त्र, संसार से पार उतारने वाला मन्त्र, (अज्ञान रूप) अन्धकार जिनमें पैदा हुआ हो उनके समूह को हटाने वाला मन्त्र, सब ऐश्वर्यों का (देने वाला) एक ही मन्त्र, विषयादि दुःख रूपी सांपों के काटने से बचाने का मन्त्र, श्री कृष्ण नाम का मन्त्र जो (जीव के) जन्म को सफल बनाने वाला अर्थात् अभेद दृष्टि देने वाला मन्त्र है उस (मन्त्र) का बार बार जप करती रहो।

सारांश :—ईश्वर के गुणों का लगातार मनन करते रहने से ही जीव को संसार के दुःखों से रक्षा हो सकती है।

व्यामोहोद्दलनौषधं मुनिमनोवृत्तिप्रवृत्यौषधं
दैत्यानर्थकरौषधं त्रिभुवने सञ्जीवनैकौषधम्।

भक्तार्तिप्रशमौषधं भवभयप्रध्वंसि दिव्यौषधं
श्रेयःप्राप्तिकरौषधं पिब मनः श्रीकृष्णनामौषधम् ।३७।।

अर्थ :—हे मन ! श्रीकृष्ण के नामोच्चारण रूप औषधि (जो संसार रूप घने मोह) को नष्ट करने वाली औषधि (है, जो) मननशील (योगियों) की मनोवृति को एकाग्र करने की औषधि (है, जो अनात्म वर्ग रूप) राक्षसों को नष्ट करने वाली औषधि (है, जो भूः भुवः और स्वः, इन) तीनों भुवनों में केवल संजीवन रूप (अर्थात् अभेद भक्ति की) औषधि (है, जो) भक्तों के दुःख को शमन करने वाली औषधि (है, जो) संसार के (जन्म-मरण रूप) भय को नाश करने वाली अलौकिक औषधि (है और जो आत्मोन्नति के) कल्याण को प्राप्त कराने वाली औषधि (है, उसको) सदा के लिए पीता रह।

सारांश :—श्रीकृष्ण के नामोच्चारण द्वारा परब्रह्म के ध्यान में एकाग्रता से दृढ़ता प्राप्त करना ही मोह-मय और भेद-सकुल ससार—द्वन्द्व रूप रोग की औषधि है।

आश्चर्यमेतद्धि मनुष्यलोके सुधां
परित्यज्य विषं पिबन्ति।
नामानि नारायणगोचराणि
त्यक्त्वान्यवाचः कुहकाः पठन्ति ।।३८।।

अर्थ :—यह आश्चर्य ही है (कि इस) मनुष्य-लोक में (देव-दुर्लभ मानव जन्म को प्राप्त करके लोग) (अद्वैत रूप) अमृत को छोड़कर (द्वैत रूप) विषय भोग रूपी विष का पीते रहते हैं (क्योंकि वे) नारायण का साक्षात्कार कराने वाले (उसके) नामों (के उच्चारण को) छोडकर दूसरी बातों का (अनात्म वर्ग सम्बन्धो अर्थात् विषय-वासना रूप निरर्थ) बकवास करते रहते हैं।

सारांश :—देव दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर जीव को आत्म-लाभार्थ

विषय-वासना से सर्वथा विरक्त होकर भगवान के भजन ध्यान में मग्न रहना चाहिए।

लाटी नेत्रपुटी पयोधरघटी क्रीडाकुटी दोस्तटी
पाटीरद्रुमवर्णनेन कविभिर्मूढैर्दिनं नीयते।
गोविन्देति जनार्दनेति जगतां नाथेति कृष्णेति च
व्याहारैः समयस्तदेकमनसां पुंसां परिक्रामति ॥३६॥

अर्थ :—भेद-बुद्धि वाले मूर्ख कवि (संसार के मोह को बड़ाने वाले और क्षण-भंगुर) प्रेमिका-सौन्दर्य के विषय-वर्णन में दिन गुज़ारते हैं। (परन्तु) एकाग्र मन वाले (भक्त-योगी) हे गोविन्द! हे जनार्दन! हे तीन लोकों के नाथ! और हे कृष्ण! (इस प्रकार के) वचन बोलने में ही समय लगाते हैं।

सारांश :—विषय-वासना का सर्वथा त्याग करना और भगवत्-चिन्तन में सदा लीन रहना ही मनुष्य के लिए श्रेयस्कर है।

अयाच्यमक्रेयमयातयाममपाच्यमक्षय्यमदुर्भरं मे।
अस्त्येव पाथेयमतिप्रयाणे श्रीकृष्णनामामृतभागधेयम् ॥

अर्थ :—(इस जन्म की) अन्तिम लम्बी यात्रा के लिए मेरे पास श्री कृष्ण का नाम अमृत रूप सौभाग्य ही रास्ते का भोजन है (जो) न उधार लाया है, न खरीदा है, न भासी है, न पकाने की आवश्यकता रखता है, न क्षय होने वाला है और न दुःख देने वाला भोज ही है।

सारांश :—भगवत् नाम ही आत्मोन्नति का सरल उपाय है।

* इति मुकुन्दमालास्तुतिः । *

इस प्रकार इन्दुमतिकृत मुकुन्दमालास्तुति का
भाषानुवाद समाप्त हुआ॥

शिव-शंकर

SHIVA - SHANKARA

मन स्थिर कर मन्त्र पर—
शिव-शकर शम्भो !

Aim at the stability of mind, and
Chant thou the Lord's name—Shiva-Shankara.

मन शु'द्ध बनि साक्षात् ननि—
हनि हनि गटि मंज़ गाश,
सुविचार ब्ययि श्रद्धायि पर—शिव०

It's purification of mind, that
Ushers unto you Light in darkness.
So, with reflection and un-suspicion,
Chant thou the Lord's name—Shiva-Shankara.

प्रभातस अछ मन्दिरस
गंग-ज़ल तन नाविथ
ध्यान-धारणायि मनि मंज़ सुर—शिव०

After purifying thy body, rise above,
Enter early the shrine—super-concious state,
In meditation and self-absorption—
Chant thou the Lord's name—Shiva-Shankara,

शिव-नाथस गोड दि अशि-जल
शेरि लागुस भाव पोष
मन प्राण वार तुता कर—शिव०

Let the tears be the ablution to Shiva,
Thy sincerity the offering of flowers,
Negation of mind with vital force—thy worship,
And, chant thou the Lord's name—Shiva-Shankara.

इन्द्रिय नैवेद्य सोम्बराव,
मन-त्रामरि मंज़ थाव,
देह्-दीप ज़ालिथ वार पर—शिव०

Collect thy offerings of distracting senses,
Arrange them in the plate of mind,
With body-lamp lit, reflectingbeyond—
Chant thou the Lord's name—Shiva-Shankara.

वासनायि धूप थव दज़वुन
विज्ञान-दीप ब्रज़वुन
व्यज़-पूर्वक व्यज़ना कर—शिव०

Keep the cencer on with incense—thoughts dsssolving,
Lit the lamp in subjective observation,
Fanning away distractions carefully,
Sing thou the Lord's name—Shiva-Shankara.

सहस्त्रडल कमल फोलराव
शिव-अनुग्रह् यिथ प्राव,
शिव नित सुर च़लि ज़्य त मर—शिव०

Now blossoms the thousand-petalled 'Kamal',
The super-conscions state—the grace divine
Be established, the wheel stands dispelled, thus
By chanting the Lord's name—Shiva-Shankara.

JANKINATH KOUL

Printed at the :-
Fine Art Press, 2nd Bridge, Srinagar,
KASHMIR.